Journal of Research in Education
ISSN (P): 2347-5676 | ISSN (O) : 2582-2357
Vol.9 No.2 | December, 2021 | pp. 117-127

St. Xavier's College of Education
(Autonomous)
Digha Ghat, Patna,Bihar-800011

शिक्षा के सामाजिक संदर्भ का विश्लेषणात्मक अध्ययन : जॉन डीवी के विशेष संदर्भ में

डॉ० दिनेश कुमार गुप्ता*

सार

प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षा के सामाजिक संदर्भ का जॉन डीवी के विचारों के आधार पर विश्लेषण किया गया है। डीवी का दर्शन सामाजिक आधार को प्रमुखता देता है। यह बालक को ऐसी परिस्थितियाँ प्रदान करता है जिसमें वह अपने जीवन मूल्यों का निर्माण करता है। अतः सामाजिक वातावरण वास्तविक शिक्षा प्रदान करने की प्रथम आवश्यकता है। सामाजिक वातावरण में आने वाली चुनौतियाँ व्यक्ति को क्रिया करने के लिए प्रेरित करती है। प्रस्तुत अध्ययन वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का अवलोकन कर ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण की बात करता है जो व्यक्ति को बदलते परिवेश के साथ सामंजस्यपूर्ण समायोजन करने में मदद करता है। प्रस्तुत शोध की प्रवृत्ति गुणात्मक है तथा लेख हेतु द्वितीयक प्रलेखों का गहन अध्ययन किया गया है।

मूल बिंदु : सामाजिक संदर्भ, जॉन डीवी, सामंजस्यपूर्ण समायोजन, गुणात्मक प्रवृत्ति

*सह–प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग,
हीरालाल रामनिवास पी०जी० कॉलेज खलीलाबाद संत कबीर नगर, उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना

प्रसिद्ध दार्षनिक अरस्तू ने इस सत्य को बहुत पहले ही उद्घाटित कर दिया था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उनके इस कथन का आशय यही है कि अपने अस्तित्व एवं विकास के लिए मनुष्य को समाज पर जितना अधिक निर्भर रहना पड़ता है, उतना किसी अन्य प्राणी को नहीं। ऐसा कहा जा सकता है कि समाज के बिना व्यक्ति अपूर्ण एवं अधूरा है। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति के बिना समाज की भी कल्पना नहीं की जा सकती है। तब हम कह सकते हैं कि व्यक्ति और समाज के बीच परस्पर अन्योनाश्रय संबंध है। एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। शिक्षा भी सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण आयाम है। अतः 19वीं शताब्दी में समाज से संबंधों की प्रगाढ़ता को शिक्षा के साथ आबद्घ करते हुए प्रयोजनवादी दार्षनिक जॉन डीवी कहते हैं कि षिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। जो समाज के संदर्भों में जन्म लेती और आगे बढ़ती है। इनकी मान्यता है कि मनुष्य कुछ जन्मजात शक्तियां लेकर पैदा होता है, मनुष्य की इन जन्मजात शक्तियों का विकास सामाजिक चेतना में भाग लेने से ही संभव हो पाता है। इस आधार पर डीवी ने शिक्षा के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्षों की चर्चा करते हुए कहा है कि मनोवैज्ञानिक पक्ष में बालक की जन्मजात शक्तियां, रुचियां एवं व्यक्तिगत विशेषताएं समाहित हैं, जबकि सामाजिक पक्ष में समाज की दशाएं, परिवार, पास पड़ोस, मित्र मंडली, सभ्यता एवं संस्कृति को सम्मिलित किया जाता है। मनुष्य समाज में रहकर नए–नए अनुभव करता है, इन अनुभवों का परिमार्जन करते हुए वह सतत सीखता रहता है। इसीलिए डीवी कहते हैं कि शिक्षा अनुभवों के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा और समाज का यह संबंध उतना ही अभिन्न और अटूट है, जितना कि मनुष्य और समाज का। आइए डीवी के संदर्भ में मनुष्य, समाज और शिक्षा के इन्हीं पारस्परिक संबंधों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन करें।

जॉन डीवी के दार्शनिक मान्यताओं का परिचयात्मक विवरणः

ह्वाइटहेड एवं गुप्त ने लिखा है कि जॉन डीवी को उन व्यक्तियों की श्रेणी में रखा जाना चाहिए, जिन्होंने दार्शनिक विचारों को अपने समय की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया है। वैचारिक जगत में जॉन डीवी का अवतरण इसी रूप में माना जा सकता है, क्योंकि जब आदर्शवाद और भौतिकवाद की दो परस्पर विरोधी धाराएं समस्त मानवता को दिग्भ्रमित की हुई थी, तब अपने प्रारंभिक अनुभवो के आधार पर डीवी की यह प्रबल धारणा बन चुकी थी कि स्थानीय समाज की विविध क्रियाओं में सामूहिक चेतना निहित होती है, साथ ही उनका यह भी मानना था कि प्रतिदिन के मानवीय संपर्क सीखने के लिए असीमित और स्वाभाविक अवसर प्रदान करते हैं। अतः समाज जीवन के साथ जुड़कर ही वास्तविकताओ को समझा जा सकता है, अन्यथा सारी मान्यताएं अतिवादी, अव्यावहारिक और अनुपयोगी ही सिद्ध होती रहेगी। वस्तुतः जॉन डीवी ने जिन शैक्षिक विचारों का प्रतिपादन किया, उस पर अनेक विद्वानों का प्रभाव था, लचीले व्यक्तित्व के कारण डीवी अपने जीवनकाल में अनेक विचारों से प्रभावित हुए। प्रारंभ में डीवी पर मोरिस का प्रभाव पड़ा। बाद में वे हीगल के आदर्शवादी विचारों से इतना प्रभावित हुए कि अपने दर्शन को प्रयोगात्मक आदर्शवाद तक की संज्ञा दे डाली। कालांतर में डीवी, डार्विन के विचारों से प्रभावित होकर विकासवादी सिद्धांतों को इतना सत्य मानने लगे कि उनका स्वयं का दर्शन प्रकृतिवादी लक्षणों से युक्त हो गया। किंतु अंततः डीवी प्रकृतिवाद और आदर्शवाद में समन्वय स्थापित करने में सफल हुए और इस आधार पर डीवी ने आदर्षवाद और प्रकृतिवाद के अर्धसत्य को पूर्णसत्य के रूप में स्थापित करते हुए जिस दर्शन का सूत्रपात किया, उसे ही आज प्रयोजनवादी दर्शन के रूप में स्वीकार किया जाता है। जीवन के उत्तरार्ध में डीवी विलियम जेम्स के दार्शनिक विचारों से इतना अधिक प्रभावित हुए कि वह पूर्ण रुप से प्रयोगवादी हो गए। जीवन के इन अनुभवों के आधार पर डीवी ने जिन मूलभूत अवधारणाओ को जन्म दिया वह अपने आपमें मौलिक एवं विशिष्ट हैं।

जॉन डीवी के दर्शन की मूलभूत अवधारणाः

1. परमशक्ति ब्रह्मांड की प्रक्रियाशील शक्तियों में निहित न होकर मानव जाति में अंतर्निहित है।

2. मानव मन ब्रह्म (ईश्वर) के व्यापक मन का अंश नहीं है। अपितु वह विकास की क्रिया का परिणाम है, जो प्राणियों की विशिष्ट आवश्यकताओं के निमित्त स्वयं विकसित होता है।

3. किसी पूर्व निश्चित मूल्य अथवा सत्य की बात मिथ्या है। हम गतिशील संसार में रहते हैं, जो सदैव परिवर्तित होता रहता है और नवीन रूप ग्रहण करता रहता है। किसी भी प्रकार का परिवर्तन, समय स्थान और परिस्थिति के प्रत्यय के संबंध में हमारे विचारों में सदैव परिवर्तन लाता है।

4. मानव अपने अस्तित्व के लिए कार्य करता रहा है और उसके विकास में उसका मस्तिष्क एक महत्वपूर्ण साधन रहा है। मस्तिष्क की क्रियाशीलता में ही ज्ञान का जन्म और विस्तार हुआ है। ज्ञान का अस्तित्व मनुष्य से अलग नहीं है।

5. विचार मस्तिष्क की क्रियाशीलता से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य अपने रक्षार्थ आजीवन कर्मरत रहता है। इस प्रक्रिया में उसका मस्तिष्क भी क्रियाशील रहता है। फलस्वरूप नूतन विचार जन्म लेते रहते हैं।

6. ज्ञान का आधार क्रियाएं हैं। इनका अस्तित्व क्रियाओं से पूर्व नहीं है। क्रियाएं अनुभव की जन्मदायिनी है और अनुभव ज्ञान के स्रोत है।

जॉन डीवी के शिक्षा का सामाजिक संदर्भः

श्री रामखेलावन चौधरी ने डीवी को संदर्भित करते हुए लिखा है कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए ही समाज ने शिक्षा को एक संस्था के रूप में जन्म दिया है। शिक्षा के द्वारा ही नई पीढ़ी को सामाजिक मान्यताएं, विश्वास और प्रतिमान सिखाए जाते हैं, जिनके द्वारा समाज जीवित रह सकता है। इसलिए समाज को शिक्षा पर अगाध विश्वास है। जिसके कारण ही समाज, शिक्षा को संरक्षण प्रदान करता है और उस पर बहुत सारा धन व्यय करता है। दूसरे शब्दों में शिक्षा व्यक्ति का समाजीकरण करते हुए उसे प्राणिशास्त्रीय मानव से समाजशास्त्रीय मानव बनाता है। शिक्षा ही है जो समाज की सभ्यता और संस्कृति को बालक के मन मस्तिष्क में पिरोकर उसे समाज के अनुरूप बना देती है। इसीलिए डीवी ने शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया कहा है और विद्यालय को समाज का प्रतिरूप बताया है। भारतीय शिक्षा की समस्याएं नामक पुस्तक में श्री चौधरी ने डीवी को संदर्भित करते हुए लिखा है कि वस्तुतः शिक्षा का उचित लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालयों का उसके बाहर के समाज के जीवन से साम्य हो, क्योंकि समाज से स्कूल का संबंध छूटते ही शिक्षा का सारा आयोजन कोरा आडंबर प्रतीत होने लगता है। यद्यपि डीवी ने बालक को शिक्षा का केंद्र माना है। किंतु बालक की स्वाभाविक रूचि और कार्यवृत्ति देखकर शिक्षा के द्वारा उनकी पूर्ति करने का, यह तात्पर्य कभी नहीं समझना चाहिए कि डीवी प्रत्येक बालक को व्यक्तिवादी बना देना चाहता है और समाज से उसका संबंध तोड़ देना चाहता है। वास्तव में डीवी मनोवैज्ञानिक आधार की अपेक्षा सामाजिक आधार को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं। बालक का सामाजिक वातावरण ही उन परिस्थितियों को प्रदान करता है, जिसमें वह अपने जीवन मूल्यों का निर्माण करता है।

अतः सामाजिक वातावरण के अभाव में वास्तविक शिक्षा नहीं दी जा सकती है, क्योंकि सामाजिक वातावरण ही उन परिस्थितियों, अवरोधों और समस्याओं को उत्पन्न करते हैं, जिसका समाधान करने हेतु व्यक्ति विभिन्न

प्रकार की क्रियाओं को करता है, यह क्रियाएं ही व्यक्ति को अनुभव प्रदान करती हैं। इन्हीं अनुभवों को ही डीवी ने ज्ञान का स्रोत बताया है। सामाजिक आधार के अंतर्गत सामाजिक परिस्थितियां, संस्कृति सभ्यता, रीति–रिवाजों, पड़ोस का वातावरण, सामाजिक प्रथाओं एवं संस्थाओं तथा सामाजिक समुदाय और उसकी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इसलिए डीवी का मानना है कि शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक होना चाहिए, न कि व्यक्तिगत।

शिक्षा और समाज के संबंधों के संदर्भ में डीवी को उद्धृत करते हुए डॉ० एस० के० पाल ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा दर्शन' में लिखा है कि ''शिक्षा के द्वारा समाज अपने प्रयोजनों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है। अपने साधनों और स्रोतों का संगठन कर सकता है और इस प्रकार जिस दिशा में वह आगे बढ़ना चाहता है, उसमें और अनिश्चितता और मितव्ययता के साथ शिक्षा के स्वरूप का निर्माण कर सकता है। अतः शिक्षा के उद्देश्यों को, समाज और उसके व्यापक उद्देश्य से अलग नहीं मानना चाहिए और न ही हमें शिक्षा को ऐसा रूप देना चाहिए कि वह समाज द्वारा अपेक्षित मान्यताओं की पूर्ति न कर सके।

जॉन डीवी की मान्यता 'विद्यालय समाज का लघु रूप'

अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक शिक्षा और समाज में डीवी लिखते हैं कि हमें तत्कालीन समाज के संपूर्ण अच्छे गुणों को विद्यालय में प्रतिष्ठापित करना चाहिए जिससे विद्यालय में प्रवेश के समय छात्र को यह अनुभव करने का अवसर मिल सके कि वह समाज में प्रविष्ट हो गया है। डीवी मानते हैं कि विद्यालय, शिक्षा के सुव्यवस्थित प्रबंध का माध्यम है। जीवन के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े जिन सद्गुणों योग्यताओं एवं कौशलों की आवश्यकता होती है, उनका अभ्यास विद्यालयों में ही होता है। गुण कर्म और स्वभाव तीनों आयाम विद्यालय ही उत्कृष्टता के सांचे में ढालता है। इसलिए विद्यालय को ऐसा स्थान होना चाहिए जहां बालक स्वतंत्र रूप से

अनुभव एवं प्रयोग कर सके साथ ही उसे स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्ति का अवसर भी मिल सके। ऐसा आदर्शात्मक वातावरण डीवी ने शिकागो विश्वविद्यालय के लैबोरेट्री स्कूल में स्थापित किया था, जहां बालकों को उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर व्यावहारिक तथा रचनात्मक शिक्षा दी जाती थी। अपने समय के विद्यालयों में डीवी ने यह दोष देखा कि समाज के औद्योगिक एवं जनतांत्रिक परिवर्तनों के साथ उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसीलिए डीवी कहते हैं कि विद्यालय को समय के साथ–साथ प्रगतिशील एवं परिवर्तनशील भी होना चाहिए। डीवी की मान्यता है कि विद्यालय, घर और समाज का संयोजक है। इसलिए डीवी अपनी पुस्तक 'मॉरल प्रिंसिपल इन एजुकेशन' मे लिखते हैं कि मौलिक रूप से विद्यालय एक ऐसी संस्था है, जो एक निश्चित एवं विशेष उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समाज द्वारा स्थापित की जाती है। इस संस्था के कार्य का निश्चित उद्देश्य समाज के कल्याण को आगे बढ़ाना है। वास्तव में विद्यालय बालकों को सहयोगी एवं पारस्परिक रूप से उपयोगी जीवन व्यतीत करने एवं सामाजिक कुशलता विकसित करने के स्थल होने चाहिए। साथ ही विद्यालय को प्रजातंत्र का ऐसा प्रशिक्षण केंद्र बनना चाहिए जहां बालक नागरिकता की आदर्श शिक्षा प्राप्त कर सके, जिससे उसमें नेतृत्व की भावना विकसित हो सके। डीवी विद्यालय को एक ऐसे प्रयोगशाला के रूप में विकसित करना चाहते थे, जहां बालक अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर सत्यता की परख स्वयं कर सके। साथ ही नवीन अनुभव प्राप्त करके नवीन सत्य एवं अन्वेषण की स्थापना करने में सक्षम हो सके। इस कार्य के लिए विद्यालयों को अपने बालकों को कार्य एवं विचार की स्वतंत्रता देनी चाहिए जहां उसे परीक्षण का व्यवहारिक अवसर प्राप्त हो सके, तभी बालक सच्चा और यथार्थ चिंतन कर सकता है। डीवी का विचार है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विद्यालय घर के समान होना चाहिए, जहां शिक्षक घर जैसा वातावरण उत्पन्न करके बालकों के आवश्यकता की पूर्ति करें। सामाजिक दृष्टि से डीवी ने विद्यालय को समाज का एक लघु रूप बताया है, जहां बालक एक दूसरे के अधिकारों, कर्तव्यों, विचारों एवं व्यक्तित्व का आदर करना सीखते हैं। डीवी ने इस बात पर बल दिया है कि विद्यालय को

चाहिए कि वह बालकों को सामाजिक क्रियाओं में प्रशिक्षित करें जो वर्तमान में प्रचलित हैं। इसी बात की पुष्टि करते हुए गैड एवं शर्मा ने अपनी पुस्तक माध्यमिक शिक्षालय व्यवस्था में माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि शैक्षिक सुधार में सबसे पहला कदम स्कूल और सामाजिक जीवन के पारस्परिक संबंधों को जोड़ना है, जो संबंध परंपरागत शिक्षा व्यवस्था में टूट चुके हैं। आज के शिक्षा का सबसे बड़ा दोष यही है की विद्यालय और समाज के बीच कोई सामंजस्य नहीं है, जिसके कारण शिक्षा बालक को समाज की चुनौतियों के अनुरूप तैयार नहीं कर पा रही है। इसीलिए डीवी को संदर्भित करते हुए श्री चौधरी ने लिखा है कि शिक्षा का यह तात्पर्य नहीं है कि विद्यार्थी एवं अध्यापक चाहरदीवारी के अंदर बंद रहकर पुस्तकों के साथ ही जुटे रहें, उन्हें खुलकर समाज की ओर भी देखना चाहिए। डीवी ने भी विद्यालय को सामाजिक प्रयोगों की प्रयोगशाला कहा है, जिसमें बालक एक दूसरे के साथ रहकर जीवन यापन के लिए सर्वोत्तम ढंग सीखते हैं। माई स्टैफोर्ड को उद्धृत करते हुए गैड एवं शर्मा लिखते हैं कि एक अच्छे स्कूल का कार्यक्रम लोगों के जीवन से संबद्ध होता है, जो सामूहिक जीवन से ही उत्पन्न हो सकता है। इसीलिए इस बात की आवश्यकता है कि वह उन्हीं लोगों की और उसी समाज की सेवा करें। डीवी ने शिक्षा को एक सामाजिक संस्था माना है। वे लिखते हैं कि एक सामाजिक प्रक्रिया होने के नाते साधारणतया शिक्षालय वह स्थान है, जो सामुदायिक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। जिसमें कि वह समस्त साधन केंद्रित होते हैं, जो बालक को जातीय एवं परंपरागत संपत्ति में अपना भाग प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करते हैं। इसीलिए श्री चौधरी ने लिखा है कि यदि शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को जीवन के लिए तैयार करना है, तो हमें विद्यालयों की शिक्षा और अन्य शैक्षिक संस्थाओं के कार्यों के बीच समायोजन उत्पन्न करना ही होगा।

उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में डॉ० दीप नारायण गुप्त का यह अभिमत बहुत ही सटीक माना जा सकता है, जिसमें उन्होंने कहा है कि छोटा ही सही पर विद्यालय को एक ऐसा आदर्श समाज बनना चाहिए जिसमें

सक्रियता सद्भाव एवं सहकारिता आदि का साम्राज्य हो, जिसमें अन्याय अत्याचार, जातीयता, प्रांतीयता, धर्मांधता, हिंसा, असत्य एवं शोषण आदि दुर्गुणों की छाया तक ना हो। इसीलिए अपनी पुस्तक रिकंस्ट्रक्शन इन फिलोसॉफी में डीवी लिखते हैं शैक्षिक प्रक्रिया उन संपूर्ण नैतिक प्रक्रियाओं में से एक है, जिसमें निकृष्टता से श्रेष्ठता का अनुभव प्राप्त करने की सतत प्रक्रिया चलती रहती है।

जॉन डीवी की शैक्षिक अवधारणा का समीक्षात्मक अध्ययन

बालक के मनोवैज्ञानिक पक्ष का विकास, सामाजिक वातावरण में ही होता है। इसलिए डीवी ने लिखा है कि व्यापक अर्थों में शिक्षा जीवन के सामाजिक रूप की अविरलता है। शिक्षा और समाज के इस अन्योन्याश्रित संबंधों के कारण कहा जा सकता है कि सामाजिक संदर्भों के बिना शिक्षा अपने आप में अपूर्ण है। व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही वही शिक्षा कल्याणकारी हो सकती है, जो सामाजिक संदर्भों के अनुरूप विकसित होती है, और आगे बढ़ती है। शिक्षा और समाज का यह संबंध जितना प्रगाढ़ होगा, शिक्षा द्वारा उतने ही सशक्त, सक्षम, समर्थ एवं सुयोग्य नागरिक तैयार हो सकेंगे। उनकी मान्यता है कि षिक्षा का उद्देश्य ऐसा वातावरण तैयार करना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समस्त मानव जाति की सामाजिक प्रक्रिया में सक्रिय रहकर योगदान करने का अवसर मिलता रहे, तभी सामाजिक कुशलता की प्राप्ति की जा सकती है और मनुष्य को समाज की चुनौती के अनुरूप तैयार किया जा सकता है।

वर्तमान संदर्भ में जॉन डीवी के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

आज जब हम वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का अवलोकन करते हैं तो हमें यह दृष्टिगोचर होता है कि आज विद्यालयों में शिक्षा को डिग्रियों से आबद्ध कर दिया गया है। जिसका आधार स्वतंत्र चिंतन न होकर एक निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर उसकी परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना मात्र रह गया है।

क्योंकि आज विद्यालयों में जो कुछ पढ़ाया सिखाया जा रहा है, उसका आधार मात्र इतना है कि जैसे जीवन से जुड़े हुए कुछ निश्चित प्रश्न है और उनका विशिष्ट उत्तर इस पाठ्यक्रम में निहित है। जबकि वास्तविकता यह है कि जीवन स्थिर नहीं, अपितु गतिशील धारणा है। जीवन यात्रा के पड़ाव पर कब कौन सी समस्या बाधा बनकर खड़ी हो जाएगी, इसका अनुमान लगाना कठिन ही नहीं, असंभव भी है। तब निश्चित उत्तरों वाले पाठ्यक्रम का औचित्य समझ से परे है। डीवी अपनी पुस्तक शिक्षा और समाज में लिखते हैं कि शिक्षा अनुभवों के पुनर्निर्माण और पुनर्रचना का एक क्रम है, जो कि मनुष्य की क्षमता में वृद्धि करने के साथ अनुभवों को और भी अधिक सामाजिक मूल्य प्रदान करता है। समय–समय पर नए नए अनुभवों एवं समस्याओं का सामना करने से मनुष्य के आंतरिक एवं बाह्य अनुभव सदैव बदलते रहते हैं। इस प्रकार उसके अनुभवों का संषोधन, पुनर्गठन अथवा पुनर्निर्माण होता रहता है। डीवी इसी परिवर्तन अथवा संशोधन को ही वास्तविक शिक्षा मानते हैं। इस शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य बदलते हुए परिस्थितियों के साथ सदैव सामंजस्यपूर्ण समायोजन बना सकता है, और उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर अग्रसर रह सकता है। उल्लेखनीय है कि जॉन डीवी के इसी दर्शन के आधार पर अमेरिका ने अपनी विभिन्न समाजिक समस्याओ का समाधान करने का सफल प्रयास किया जिसके बल पर ही आज वह दुनिया की महाशक्ति बन चुका है। उनका दर्शन तत्कालीन शिक्षा पर कितना प्रभावशाली था, उसका प्रतिबिम्बन इन पंक्तियों में किया जा सकता है, शिक्षा संबंधी महान नेतृत्व जिसका संपादन डीवी ने 40 वर्षों से अधिक समय तक किया, यह अत्यन्त सम्मान एवं गरिमापूर्ण है। शिक्षा क्षेत्र में उनके नेतृत्व ने स्वराष्ट्र की संकुचित सीमाओ को तोड़कर विश्वव्यापी प्रभाव स्थापित किया। वह सच्चे अर्थों में विश्व के शिक्षा नायक थे। अतः स्वतः सिद्ध मीमांसा यह है कि डीवी के प्रयोजनवादी दार्शनिक विचारधाराओं पर स्थापित शैक्षिक आंदोलनों ने आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को समग्र रूप से प्रभावित किया है, जिसके कारण उनका प्रयोजनवादी शैक्षिक दर्शन आधुनिक युग की प्रभावशाली विचारधारा ही नहीं, अपितु व्यवहारिक उपयोगिता बन गई। जिससे मानव जीवन की समसामयिक समस्याओं का वास्तविक और व्यावहारिक समाधान किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

गुप्त डी एन प्रसाद. (1957). हमारी माध्यमिक शिक्षा इसके सिद्धांत एवं समस्याएं. पटना, कला निकेतन.

गैड एवं शर्मा. (1961). माध्यमिक शिक्षालय व्यवस्था. आगरा, राम प्रकाश एंड संस.

चौधरी आर. (1960). भारतीय शिक्षा की समस्याएं. लखनऊ, हिंदी साहित्य भंडार.

डीवी जे. (1959). मॉरल प्रिंसिपल इन एजुकेषन.बोस्टन, बीकन प्रेस.

डीवी जे. (1959). रिकंस्ट्रक्शन इन फिलोसॉफी.बोस्टन, बीकन प्रेस.

पाल एस के. (1996). शिक्षा दर्शन, इलाहाबाद, कैलाश प्रकाशन.

ह्वाइटहेड ए. गुप्त बी आर. (1996). कुछ महान शिक्षक. इलाहाबाद, कैलाश प्रकाशन.

●●●